International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

भारत में क्षेत्रीय दलों का उद्भव एवं विकास

हर्षवीर

राजनीति विज्ञान विभाग

म.नं. 45, सैक्टर–1, रोहतक (हरि0)

शोध आलेख सार– भारत में क्षेत्रीय दलों के निर्माण का अपना विशेष इतिहास है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत में क्षेत्रीय दलों की उत्पति का प्रमुख कारण राष्ट्रीय दलों से असंतुष्टि का भी परिणाम रहा है और अधिकतर क्षेत्रीय दल कांग्रेस पार्टी में आपसी फूट तथा प्रतिस्पर्धा के कारण ही पनपे है। यदि वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो कई क्षेत्रीय दल तो गठबंधन राजनीति की देन है। अपने शैशवलकाल में भारत में क्षेत्रीय दलों का उदृध व विकास राज्यों की स्वायत्तता की मांग, उपसंस्कृति के विकास, जातीयता व धर्म की भावना आदि के कारण ही हुआ है। इसमें असंतुलित क्षेत्रीय विकास ने भी अपना योगदान दिया है जो क्षेत्र राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से कट गए या उनकी उपेक्षा हुई, कालांतर में वहां क्षेत्रवाद की भावना का जन्म हुआ और इससे क्षेत्रीय दलों का निर्माण हुआ। वस्तुतः 1967 में चौथे आम चुनावों के बाद कई राज्यों में गैर–कांग्रेसवाद की जो लहर पैदा हुई आगे चलकर उसने सम्पूर्ण राजनीति को अपने चपेट में लिया और 1989 के बाद तो क्षेत्रवाद की राजनीति बदलते भारतीय राजनीतिक परिवेश में एक अटल सत्य बन गई। अतः वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में भी इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि प्रत्येक आम चुनाव के बाद क्षेत्रीय दलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत के सन्दर्भ में क्षेत्रीय दलों के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है।

International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

मूलशब्द– क्षेत्रवाद, राजनीतिक दल, आम चुनाव, क्षेत्रीय दल, क्षेत्रवाद की राजनीति, गैर–कांग्रेसवाद, गठबन्धन की राजनीति।

भूमिका– वस्तुतः क्षेत्रीय दल भारतीय राजनीति की विशेष पहचान हैं। भारत के विभिन्न भागों में क्षेत्रवाद की बढती प्रवृति के कारण क्षेत्रीय दलों की उत्पति होना आम बात है। भारतीय संविधान के अनुसार देश में राजनीतिक दलों के स्तर का निर्धारण समय–समय पर चुनाव आयोग द्वारा किया जाता है। यदि कोई राजनीतिक दल चुनावों में चार या अधिक राज्यों में विशेष मत या सीटें प्राप्त कर लेता है तो चुनाव आयोग उसे राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता दे देता है। यदि कोई राजनीतिक दल चार से कम राज्यों में अपना प्रभाव कायम रख पाता है तो उसे प्रादेशिक या क्षेत्रीय दल के रूप में जाना जाता है। प्रादेशिक दल के लिए विधानसभा में 6 प्रतिशत सीटें या डाले गए मतों का 4 प्रतिशत हासिल करना आवश्यक है।

''एक क्षेत्रीय दल वह है जिसका प्रभाव एक या दो राज्यों तक सीमित है और वह अपने ही क्षेत्र में चुनावी प्रक्रिया में भाग लेता है।''[1] दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय दल वे हैं जिनका प्रभाव क्षेत्र केवल सीमित ही है और इनकी सत्ता का प्रभाव राज्य तथा क्षेत्र स्तर पर ही होता है। ये राज्य स्तर पर अपना वर्चस्त कायम करके राष्ट्रीय स्तर भी उभरने का प्रयास जारी रखते हैं।

क्षेत्रीय दल सामान्यतयाः एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में ही अपना कार्य करता है। एक क्षेत्रीय दल अपने क्षेत्र के लोगों के भाषाई, धार्मिक तथा सांस्कृतिक समूहों के हितों के अनुरूप ही हितों का प्रतिनिधित्व करता है और उसके कार्यक्रम व नीतियां उस क्षेत्र तक ही सीमित होते हैं। इस तरह क्षेत्रीय दलों के नेता भी स्थानीय होते है और उनकी सोच भी क्षेत्र विशेष तक ही सिमटकर रह जाती है।

क्षेत्रों दलों का उद्भव एवं विकास– भारत में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति एवं विकास उस क्रम के अनुसार नहीं हुआ जिस प्रकार ब्रिटेन तथा अमेरिका में हुआ। भारत में

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ऐसी परिस्थितियां पैदा हुई कि 1885 में एक रिटायर्ड आई. सी.एस. अधिकारी ए.ओ.हयूम के प्रयासों से भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। जब यह दल राष्ट्रवादी सोच रखने लगा तो ब्रिटिश सरकार ने इस पर अंकुश लगाने के लिए 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना को प्रोत्साहन दिया। मुस्लिम लीग प्रारम्भ में एक राजनीतिक दल न होकर एक साम्प्रदायिक संस्था थी जिसका उद्देश्य मुसलमानों के लिए सुविधाएं प्राप्त करना था। इसके विरोध स्वरूप 1916 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का जन्म हुआ जिसका उद्देश्य मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक नीतियों के प्रति हिन्दुओं के हितों की रक्षा करना, 'पूर्ण स्वराज्य' की प्राप्ति तथा हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना था।

वस्तुतः 1907 में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो भागों में बंट गई। परन्तु 1916 में दोनों का फिर मेल हो गया। आगे चलकर 1922 में गांधी जी के असहयोग आन्दोलन वापिस लेने के बाद कांग्रेस के वरिष्ठ सदस्यों सी.आर दास पंडित मोतीलाल नेहरू और एस.सी. कलेकर ने अलग से स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। 1924 में भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई तथा 1934 में समाजवादी दल का निर्माण हुआ जो 1948 तक कांग्रेस की एक शाखा के रूप में कार्य करता रहा। इस प्रकार स्वतन्त्रता से पूर्व इन सभी दलों का मुख्य ध्यये स्वराज्य प्राप्ति ही रहा।[2]

आजादी के बाद भारत में अनेक छोटे–छोटे प्रादेशिक तथा साम्प्रदायिक दलों का जन्म हुआ। इनमें द्रविड मुनेत्र कड़गम तथा अखिल भारतीय अनुसूचित दल संघ प्रमुख है। 1952 में जब प्रथम आम चुनाव हुआ तो उस समय 14 राष्ट्रीय तथा 50 राज्य स्तर के दल थे। परन्तु 1957 के आम चुनाव में निर्वाचन आयोग ने उन्हीं दलों को अखिल भारतीय राजनीतिक दल का दर्जा दिया जिन्हें प्रथम चुनाव में कुल मतों के कम से कम तीन प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। फलस्वरूप केवल चार दलों– कांग्रेस दल, प्रजा समाजवादी दल, साम्यवादी दल, तथा जनसंघ को ही अखिल भारतीय राजनीतिक दलों का दर्जा प्राप्त हो सका। इसके अतिरिक्त 19 दलों को राज्य स्तरीय दल का दर्जा मिल

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

गया और मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों की संख्या 5 हो गई। इस चुनाव में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव घट गया और लोकसभा में कांग्रेस को 494 में से 361 स्थान प्राप्त हुए।[3]

भारत में 1967 के चौथे आम चुनावों में कांग्रेस विरोधी वातावरण उत्पन्न हुआ और इसे द्वितीय क्रांति का नाम दिया गया। विपक्षी दलों ने गैर–कांग्रेसवाद से अनुप्रेरित होकर अनेक राज्यों में कांग्रेस विरोधी मोर्चे का गठन किया और अनेकों कांग्रेसजनों ने कांग्रेस छोड़कर नए क्षेत्रीय दलों का गठन किया। इस चुनाव को क्षेत्रीय दलों के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जाना जा सकता है क्योंकि यह कांग्रेस के कमजोर होने तथा क्षेत्रवादी ताकतों के उदभव का समय था। इस चुनाव के बाद केन्द्र में तो कांग्रेस की सरकार बन गई लेकिन 17 राज्यों में से 9 राज्यों में ही उसे बहुमत मिल सका। अब राज्यों की राजनीति में क्षेत्रीय तथा गैर–कांग्रेसी दलों की गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हो गया।[4]

1971 के चुनावों में भी क्षेत्रीय दल कोई चमत्कार नहीं दिखा सके और कांग्रेस पहले से मजबूत होकर उभरी। परन्तु 1977 के चुनाव ने कांग्रेस की कमर तोड़ दी। इस बार गठबंधन सरकार के रूप में केन्द्र में प्रथम बार जनता पार्टी की गैर–कांग्रेसी सरकार बनी। इस बार क्षेत्रीय दलों की स्थिति में सुधार आया। परन्तु 1980 में लोकसभा की मध्यावधि चुनावों में गैर–कांग्रेसी दलों को मुँह की खानी पड़ी और उनका वर्चस्व कमजोर हो गया। इस बार चुनाव में द्रविड मुनेत्र कड़गम, अन्ना द्रविड मुनेत्र कडगम अकाली दल आदि क्षेत्रीय दलों की भूमिका सीमित हो गई।

1984 के लोकसभा चुनाव के अवसर पर चुनाव आयोग ने 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर के दल के रूप में मान्यता दी। इस बार भारत के इतिहास में तेलगुदेशम एक शक्तिशाली क्षेत्रीय दल के रूप में उभरा और उसे 28 स्थानों पर विजय प्राप्त हुई, इसमें नेशनल कांफ्रेस को 3, अन्ना द्रविड मुनेत्र कड़गम को 12 तथा द्रविड मुनेत्र कड़गम को 1 स्थान प्राप्त हुआ। इस चुनाव में क्षेत्रीय दलों की स्थिति में कुछ सुधार

हुआ लेकिन वे केन्द्र की राजनीति में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं थे।[5]

1989 के लोकसभा चुनावों का राजनीतिक दृष्टि से काफी महत्व है। इसके बाद भारत में गठबंधन की राजनीति का नया युग शुरू हुआ और उसमें क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ गया। 1989 से लेकर 2009 तक (9वीं लोकसभा से 15वीं लोकसभा) कोई भी राष्ट्रीय दल इस स्थिति में नहीं रहा कि वह क्षेत्रीय दलों के सहयोग के बिना सरकार बना सके।

भारत में 1989 में क्षेत्रीय दलों के सहयोग राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी। 1991 के लोकसभा चुनावो में भी क्षेत्रवाद का खुला खेल खेला गया और कांग्रेस ने क्षेत्रीय दलों के सहयोग से ही सरकार बनाई। 1996 में 11वीं लोकसभा चुनावों में 8 राष्ट्रीय स्तर के तथा 39 क्षेत्रीय दलों ने भाग लिया। इस बार भी क्षेत्रीय दलों के सहयोग से ही केन्द्र सरकार बनी। परन्तु यह सरकार लगभग 2 वर्ष तक ही चल सकी।[6]

1998 में 12वीं लोकसभा के चुनावों के बाद भारतीय जनता पार्टी गठबंधन की सरकार बनाने में क्षेत्रीय दल तेलगुदेशम पार्टी की प्रमुख भूमिका रही। इस सरकार को गिराने में अखिल भारतीय सभा द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पार्टी ने अपना योगदान दिया। इसी तरह 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनावों के उपरांत भी तेलगुदेश पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया और यह सरकार पूरे 5 वर्ष चली। इस बार क्षेत्रीय दलों को 158 स्थान प्राप्त हुए। यह प्रथम अवसर था जब क्षेत्रीय दलों की स्थिति इतनी मजबूत हुई।[7]

2004 में भी 14वीं लोकसभा चुनावों में 45 क्षेत्रीय दलों ने भाग लिया तथा यही स्थिति 15वीं लोकसभा के चुनावों में देखने वाली। दोनों बार क्षेत्रीय दलों को क्रमशः 29.3 तथा 28.4 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए। इसी कारण दोनों बार कांग्रेस गठबंधन की सरकार बनाने में क्षेत्रीय दलों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।[8]

इसी तरह भावी लोकसभा चुनावों में भी क्षेत्रीय दलों की बढती भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि 2013 के अन्त में 5 राज्यों हुए विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दल कोई खास कारनामा तो नहीं कर पाए, लेकिन नई दिल्ली में 'आम आदमी पार्टी' (आप) का उभरना अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना है जो भविष्य में देश की राजनीति को नई दिशा की तरफ ले जाने का स्प्ष्ट संकेत देती है। ऐसे में क्षेत्रवाद की राजनीति का भविष्य कैसा रहेगा, इस पर कुछ भी कहने से पहले प्रत्येक राजनीतिक विश्लेषक एक बार सोचने को अवश्य विवश है।

सारांश– सत्य तो यह है कि आज भारत में क्षेत्रीय दलों के सहयोग के बिना केन्द्र में न तो सरकार बनाई जा सकती है और न ही चलाई जा सकती है। क्षेत्रीय दलों के बढते प्रभाव ने भारतीय संघवाद में सौदेबाजी की प्रवृति का जन्म हुआ है और क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय दलों के साथ सौदेबाज के तहत सरकार निर्माण में अहम भूमिका अदा करते हैं। आज क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका ने केन्द्र सरकार का राज्य सरकारों पर नियन्त्रण कमजोर किया है और राज्य स्वायत्तता की मांग अधिक प्रबल होने लगी है। इसके साथ–साथ प्रधानमंत्री पद की गरिमा व स्थिति में भी गिरावट आई है। सरकार को स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री तक को क्षेत्रीय दलों के आगे नतमस्तक होना आम बात है। अन्ततः भारत में प्रत्येक चुनाव के बाद क्षेत्रीय दलों की बढ़ती संख्या राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को चुनौती देने की स्थिति में नजर आने लगी है। अतः आज बदलते राजनीतिक परिवेश में यह बात समझना आवश्यक हो गया हे कि क्षेत्रीय दलों के कुप्रभाव से भारतीय संघवाद की रक्षा के विकल्प खोजकर दलीय लोकतन्त्र व संसदीय प्रणाली का भविष्य सुरक्षित करने के प्रयास किए जाएं ताकि क्षेत्रवाद की राजनीति पर अंकुश लगाया जा सके।

सन्दर्भ सूची

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

1. प्रभात किरण, ''रीजनल पॉलिटिकल पार्टीज इन इंडिया'', थर्ड कॉन्सेप्ट, वॉल्यूम 21, नं0 242, अप्रैल 2007, पृ0 31.

2. घनश्याम चौहान, भारतीय राजनीति और सरकार, सुमित एन्टरप्राईजेज, नई दिल्ली, 2005, पृ0 260.

3. एन के गोस्वामी, भारत में संसदीय व्यवस्था, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2005 , पृ0 217–18.

4. मौरिस जोन्स (अनुवादित), भारतीय शासन व राजनीति, सुरजीत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1970, पृ0 212–13.

5.एन के गोस्वामी, पूर्वोक्त, पृ0 226.

6'. शैलेन्द्र सेंगर, भारतीय शासन एवं राजनीति, एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2007, पृ0 261.

7. एल. मुहिन्द्रो, ''रीजनल पॉलिटिकल पार्टीज इन इंडिया'', थर्ड कॉन्सेप्ट, वॉल्यूम 18, नं0 207, मई 2004, पृ0 41–42.

8. एस. प्रीत कौर, ''रीजनल पार्टीज, कोलिशनज एण्ड देयर इम्पैक्ट'', थर्ड कॉन्सेप्ट, वॉल्यूम 26, नं0 305, जुलाई 2012, पृ0 46.